Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-6(A) June-2026

Original Article

मिथिलांचल की लोक संस्कृति के स्वरूप

डॉ. अशोक कुमार यादव

सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास), ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

Email: ashokkumaryadav7385@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180603
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 6(A)
Pp.6-8
June - 2026
Submitted: 10 May 2026
Revised: 20 May 2026
Accepted: 10 June 2026
Published: 30 June 2026

सारांश :–

मिथिलांचल आर्यों के सांस्कृतिक उपनिवेशवाद एवं तज्जनित आरोहण से उद्भूत भारत का वह भू–क्षेत्र है, जहाँ संस्कृति का बहुआयामी स्वरूप ऐसा देदीप्यमान हुआ, जिसने अन्य प्रदेशों में अपनी श्रेष्ठता साबित कर दी। ऐसे अप्रतिम सांस्कृतिक उत्कर्ष की सहभागी थी पूर्व से यहाँ निवास करने वाली जनजातियों के समृद्ध सामाजिक–धार्मिक आस्था एवं आर्यों की संस्कृति के साथ संश्लेषणात्मक अभिक्रिया। ऐसी साँझी संस्कृति मानवीय गुणों के विकास के साथ–साथ उनके कलात्मक विकास को उत्कर्ष एवं व्यापक बनाने की सफल चेष्टा है। वस्तुतः मिथिलांचल की सांस्कृतिक संरचना, यहाँ की लोक–संस्कृति की श्रेष्ठता न केवल मानवीय गुणों का व्यापक स्वरूप प्रस्तुत करती है, वरन् कला एवं उसके विकास को लोक–जीवन के त्योहारों एवं आस्थाओं में पिरोकर उनके संवर्द्धन का क्रमबद्ध इतिहास भी प्रस्तुत करती है। मिथिलांचल अपने लोक–पर्व एवं त्योहारों के लिए भी प्रख्यात रही है। ऐसे अनेकानेक त्योहार मिथिलांचल में आज भी प्रचलित हैं जो "कला" के विभिन्न तत्वों का विकास किया है। खासकर मूर्तिकला के विकास की प्रारंभिक स्थिति तथा उत्तरोत्तर विकास का रूप यहाँ के सामाजिक–धार्मिक कृत्यों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

भूमिका :– निःसंदेह मिथिलांचल का धार्मिक परिदृश्य पौराणिक–धार्मिक संकल्पनाओं से अनुप्राणित है, जिसमें पुराणों के आदर्शों को कलात्मक परिधि में, कभी सांकेतिक रूप में, कभी प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा, कभी मृत्तिका–निर्मित आकृतियों द्वारा तथा कभी मात्र सांकेतिक चित्रों द्वारा अभिव्यक्त करने की परिपाटी है। वस्तुतः मिथिलांचल की लोक–संस्कृति अप्रतिम है, जिसके प्रत्येक क्रियात्मक आयोजन में वैदिक संस्कारों की अभा, पौराणिक कथानकों का आदर्श, आध्यात्मिक उन्नयन की अभिलाषा तथा स्थानीय आस्थाओं का सबल पक्ष उदीयमान रहता है। व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से सम्पादित होने वाले प्रायः सभी आयोजनों में अभिव्यक्त ध्येय का दृश्य रूप मूर्तिकला के लाक्षणिक अर्थों की पुष्टि करते हैं। अवसरों की प्रकृति के आधार पर प्रतिरूपों में विविधता प्रकट होती है जो प्रतिमा–विज्ञान की दृष्टि से उसके विकास की प्रावस्थाएँ हैं। वैसे तो ऐसें कृत्यों का मौलिक निहितार्थ कभी धार्मिक मूल्यों की स्थापना, कभी सामाजिक मर्यादा का रेखांकन तथा कभी कृषि आधारित व्यवस्था का सर्वतोभावेन संवर्द्धन होता है। सामान्य अवधारणा में मूर्तिकला का इतिहास मानवों के नैसर्गिक आनंद की दृश्य अनुभूति हेतु निर्मित प्रतिरूपों के आधार पर जाना जाता है, जिसका चरमोत्कर्ष पाषाण खंडों को 'तक्षण' एवं 'अक्नात' कर मनोवांछित विम्बों में अभिव्यक्त करने की परम्परा के रूप में जाना जाता है। गांधार से आरंभ होकर पाल शैली तक इनकी क्षेत्रीय एवं शास्त्रीय अभिव्यंजनाएँ हैं। इस दृष्टि से भी प्राचीन मिथिलांचल मूर्तिकला की संवेदनाओं से भिज्ञ थी, ऐसा मानने का आधार मिथिलांचल के भौगोलिक निर्धारण का वह पौराणिक आख्यान है, जिसमें इसकी पश्चिमी सीमा का निरूपण उस नारायणी नदी को दर्शाया गया है, जिसके उद्गम स्त्रोत से विष्णु की पावन प्राकृतिक मूर्ति प्राप्त होती है। इस नदी को शालग्रामी भी कहा जाता है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि पंच–देवोपासक मिथिलांचल का अतीत मूर्तिकला की अवधारणाओं से न केवल परिचित था, वरन् ऐसी कलाओं का मर्मज्ञ भी था, जिसे मिथिलांचल में उपस्थित अन्य उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

सैन्धव सभ्यता का 'प्रस्तर–लिंग' मूर्तिकला का प्राचीनतम उदाहरण है, किन्तु वैज्ञानिक तथ्य ऐसे कलात्मक विकास का प्रारंभिक चरण मृत्तिका–निर्मित आकृतियों को मानते हैं। मिथिलांचल में मृत्तिका–लिंग के पूजन की परम्परा अति प्राचीन है जो अन्य प्रदेशों में दृष्टिगत नहीं होती। ऐसे लिंग एक एकादश तथा अन्य रूपों में महिलाओं द्वारा निर्मित एवं पुरूषों द्वारा सम्पूजित होते हैं। ये रूद्र शिव की लिंगाकृति अभिव्यक्तियाँ हैं। काल–निर्धारण की ऋणात्मक पद्धति भी इसकी प्राचीनता व्यक्त करने में असमर्थ है। इस दृष्टि से प्राचीन मिथिलांचल की लोक–संस्कृति में मूर्तिकला का ज्ञान परिलक्षित है। पार्थिव लिंग के साथ पार्थिव 'कीर्तिमुख' का पूजन मिथिलांचल की धार्मिक परम्परा में विहित एवं अनिवार्य है। "कीर्तिमुख" स्वरूप यहाँ मानवीय है; मात्र इसके मुखाकृति की पूजा होती है जिनकी दो आँखे? मुख, कान तथा मस्तक पर तिलक शोभायमान होता है। यह उदाहरण देवताओं को मनुष्याकृति में निरूपण (एंथ्रोपोमोरफिज्म) का ही न केवल प्रथम दृष्टान्त माना जा सकता है, वरन् आधुनिक तक्षण कला का पूर्ववर्ती रूप भी कहा जा सकता है। रूद्र–शिव की लिंगाकृति का निरूपण मिथिलांचल में गोबर द्वारा भी होता है, जिसके पूजन का उद्देश्य अनिष्टकारी प्रभाव द्वारा किसी व्यक्ति को प्रताड़ित करना होता है। इसके अतिरिक्त काष्ठ–निर्मित लिंग की अवधारणा भी मिथिलांचल में प्रचलित है। संभव है, ऐसा पूजन पाशुपत सम्प्रदाय के तांत्रिक सिद्धान्तों का क्रियात्मक पक्ष हो। मनुष्याकृति में निरूपण का एक प्रशस्त, लोकप्रिय तथा असाधारण दृष्टान्त है पुराने चीथड़ों से गुड्डा–गुड़िया (कनिया –पुतरा) का अल्पवयस की बालाओं द्वारा निर्माण, उसका अलंकरण तथा सांसारिक रूप में इसके साथ मनोरंजन की अतिरंजना। ऐसे सृजन में बालाएँ मूर्तिकला के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक पक्ष का ठीक उसी प्रकार अनुशीलन करती है, जिस प्रकार एक मूर्तिकला– विशेषज्ञ 'तक्षण' के समय उसकी बारीकियों के प्रति सतर्क रहता है।ऐसे तथ्यों का तुलनात्मक फलितार्थ निश्चय ही मिथलांचल में मूर्तिकला के प्रति भिज्ञता का परिचायक है।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ. अशोक कुमार यादव सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास). ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

How to cite this article:
यादव, अशोक. कुमार. (2026). मिथिलांचल की लोक संस्कृति के स्वरूप. Journal of Research & Development, 18(6(A)), 6–8. https://doi.org/10.5281/zenodo.21487317

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.21487317
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-6(A) June-2026

किन्तु, अति प्राचीन मूर्त्तियों की अनुपलब्धता को कारण कोटि में मानकर यह कहना कि प्राचीन मिथिलांचल के लोग मूर्त्तिकला से अनभिज्ञ थे, सही नहीं है। इसका एक मात्र कारण प्रस्तरों की अनुपलब्धता माना जा सकता है। 'मूर्त्तिकला–केन्द्रों' का विकास भी प्रायः उन क्षेत्रों में हुआ, जिसके समीपस्थ क्षेत्र में उत्तम कोटि का प्रस्तर उपलब्ध था। उद्‌भव के उपर्युक्त समृद्ध उदाहरणों के अतिरिक्त मूर्त्तिकला के प्रारंभिक चिन्हों को मिथिलांचल के परम्परागत पर्व–त्योहारों में देखा जा सकता है। चाहे धार्मिक उत्सव हो, अथवा सामाजिक व्यवस्था में चिन्हित संस्कार; हरेक आयोजन में सांकेतिक अथवा मानवीय आकृतियों का सृजन एवं प्रयोजन के अनुकूल सम्पूजन होता है। अपने मौलिक स्वरूप में आज भी ऐसे दृष्टान्त लोक–आस्थाओं के रूप में मिथिलांचल में विद्यमान हैं। आधार सामग्री तथा गोबर आदि का प्रयोग होता है, जबकि चित्ताकर्षक बनाने के क्रम में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है। कुछ विशिष्ट संस्कारगत अवसरों पर सुपारी अथवा नारियल का उपयोग सम्बद्ध दवे अथवा देवी के प्रतिरूप मे किया जाता है। मिथिलांचल के कुछ विशिष्ट त्योहारों में कुश द्वारा आकृति–निर्माण की भी परम्परा है। सांकेतिक आकृतियों के प्राचीनतम रूपों का दृष्टान्त 'मातृ देवी' के निरूपण में स्पष्ट है। ब्राह्मणों में जहाँ कौलिक देव अथवा देवी की स्थापना अर्द्धवत्ताकार पिंड द्वारा होता है, वहीं इतर जातियों में मातृदेवी को दीवारों पर गाय के गोबर, घृत तथा सिंदूर के सहयोग में उकेरा जाता है, जिसे प्रस्तर खंडों पर अक्नात मूर्त्तियों (कार्वेशन) के समरूप माना जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ बहुधा ऐसे ही रूप अन्न–संग्रह रखने वाले मिट्‌टी निर्मित उपादानों (कोठी) पर उकेरते है। "मातृ देवी" की प्राचीनता एक सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य होने के कारण मिथिलांचल में मूर्त्तिकला स्वतः प्रभावित हो जाती है।

सांकेतिक मूर्त्ति–निर्माण की परम्परा में 'शक्ति' के प्रतिरूप को 'सुपारी' द्वारा व्यक्त किया जाता है। विवाहोपरान्त लड़कियाँ 'गोरी' की पूजा सुपारी को प्रतिरूप मानकर करती हैं। उपनयन संस्कार आदि में कुश–निर्मित ब्रह्मा के पूजन की परम्परा है। महिलाओं द्वारा पुत्रों के दीर्घायु होने के निमित्त आयोजित 'जीमूतवाहन' की अभ्यर्थना में 'कुश' निर्मित किसी जीमूतवाहन देव की पूजा की जाती है। नारियल फल द्वारा गणेश का आवाहन किया जाता है। भले ही आकृतियाँ अपने मूल स्वरूप में अवतरित नहीं है, किन्तु मूर्त्तिकला की अवधारणाएँ यहाँ निश्चित रूप से प्रकट हैं। आकृतिमूलक श्रेणी की मूर्त्तियाँ मिथिलांचल के लोक–त्योहारों में प्रचुरता के साथ उपलब्ध हैं। विविध रूप के मृतिका–निर्मित मूर्त्तियों में पशु–पक्षी, खगोलीय पिंड तथा प्राकृतिक वस्तुएँ पौराणिक कथानकों की देव–देवियों, ऋषि–मुनि तथा अवतारी महामानवों का चित्रण दृष्टिगत होता है। प्राकृतिक रंगों के द्वारा इन मूर्त्तियों को और अधिक आकर्षक बनाया जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर प्रयुक्त हाथी, तथा विवाह के समय 'वर' को दिखाने जानेवाले "ठक–बक" मिथिलांचल की मूर्त्तिकला की अभिव्यंजनाएँ हैं। नव विवाहिता द्वारा "पंचमी" एवं "मधुश्रवणी" के अवसर पर मृत्तिका–निर्मित नागों की पूजा की जाती है। मूर्त्ति–निर्माण की आधार सामग्री भले ही मृत्तिका है, किन्तु मूर्त्ति–निर्माण की कला में यहाँ की महिलाएँ दक्ष थीं, ऐसा उपर्युक्त उदाहरण प्रतिपादित करते हैं। सर्वाधिक प्रशस्त एवं अधिकाधिक आयोजनों में प्रदर्शित मूर्त्ति 'गोरी' की होती है जो हल्दी–चूर्ण तथा पानी के संयोग से आकार ग्रहण करता है एवं महिलाओं द्वारा सम्पूजित होता है। ऐसे अवसर पर अविवाहित कन्याओं द्वारा इच्छित वर–प्राप्ति हेतु सम्पादित 'सांझ त्योहार', विवाहोपरान्त के चौथे दिन वर–पक्ष की ओर से आने वाली गौरी, पंचमी एवं मधुश्रावणी में सम्पूजित गौरी की आकृतियों में प्रतिपादित होता है। इसके अतिरिक्त 'वटसावित्री' में भी हल्दी–चूर्ण–निर्मित गौरी जिसे 'हर–गौरी' कहा जाता है, के पूजन का प्रावधान है। कुछ ऐसे प्राकृतिक स्वरूप के प्रतीकात्मक मूर्त्तियों का विवेचन मिथिलांचल के महत्वपूर्ण त्योहार "सप्ता डोरा" में दिखाई देता है। बाह्य प्रतिरूप सूर्य–पूजा सात धागों (सूर्य रथ के सात अश्व का नियंत्रक) द्वारा, तीन गांठ, त्रिदेय सूचक तथा 'शक्ति' स्थापना का अद्‌भुत स्वरूप है। पूजा–विधि में प्रत्येक साधक (डोरा) द्वारा धान से ऐसे सोलह चावलों का निर्माण किया जाता है जो न तो अंशमात्र भी खंडित हो और न तो चावल का रंग लाल हो। श्वेत धवल चावल ही पूजन हेतु विहित हैं। ये श्वेत धवल चावल षोडरा मातृक के प्रतिमान हैं तथा इसका भावार्थ शक्ति–अराधना में उन बाल–कन्याओं को सम्बोधित करता है जो 'रजस्वला' न हो। लाल चावल पूजन हेतु अवांछित होना रजस्वला हुई कन्याओं की ओर संकेत करता है। मिथिलांचल में आज भी कुमारी कन्याओं का 'शक्ति' रूप में पूजन अति लोकप्रिय है। सम्पूर्ण उद्धरण मूर्त्तिकला के सांकेतिक प्रतिमान से आरंभ होकर सम्पूर्ण आकार में प्रतिबिम्बित होने की परम्परा का परिचायक है।

कुछ प्रसिद्ध त्योहारों एवं उसमें निरूपित आकृतिमूलक संरचना तथा सम्बन्धित संज्ञारूप विवेचन इस प्रकार हैं।

परवेब अथवा हुड़ाहुड़ी :– पशुधन के संवर्द्धन एवं कृषि–कार्य की सफलता हेतु कृषकों द्वारा आयोजित पर्व। कृष्ण के गोवर्धन स्वरूप की प्रतिमा का गोबर से निर्माण एवं गोशाला में स्थापित कर इसका पूजन होता है।

गवहा संक्रांति :– इस आयोजन में कृषक लक्ष्मी नारायण के युगल रूप में निर्माण गोबर अथवा चावल–चूर्ण (पिठार) से करते हैं। लहलहाते धान के मध्य इन्हें स्थापित कर विधिवत पूजा–अर्चना करते हैं।

सामा अथवा सामा–चकेबा :–

'कला' के वैविध्य एवं मूर्त्तिकला के विकास को समेकित रूप में अभिव्यक्त करने में यह त्योहार पूर्णतः सक्षम है। नृत्य, संगीत, शिल्प तथा मूर्त्तिकला का अद्‌भुत संयोग इस त्योहार करता है, वरन दक्ष, सुघड़ हाथों से निर्मित प्रतिमाओं द्वारा पौराणिक कथाओं का साकार संसार उपस्थित कर देता है। निर्मित प्रतिविम्बों का विभिन्न प्राकृतिक रंगों के द्वारा अधिक आकर्षक बनाया जाता है। संरचित आकृतियों की आकृति, ध्येय एवं उनका पौराणिक आधार रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। मृतिका (गीली मिट्‌टी) निर्मित तथा विभिन्न रंगों से अलंकृति आकृतियों में सामा (नारी आकृति), चकेबा (पुरूष) पँचभइयाँ, तीतिर, पालकी, मालिन, झाँझी कुकुर (विशेष) श्वान जो संभवतः महाभारत के समापन के बाद युधिष्ठिर का अनुगामी था, वृंदावन तथा चुगीला की प्रधानता होतो है। सम्पुर्ण आकृतियों में मात्र 'चकेबा' की आकृति आग में पकाई होती है। इसके अतिरिक्ति 'सीमा' नारी आकृति मूलक प्रतिरूप है। महाभारत में साम को कृष्ण तथा जाम्बवती से उत्पन्न पुत्री माना गया है, जिसका विवाह किसी मिथिलावासी से हुआ था। संभवतः 'चकेबा' सामा के प्रति रूप का प्रतिपादन है। 'पंचभइयाँ' तथा 'सतभइयाँ' एक साथ पाँच एवं सात पुरूष–समूहों को व्यक्त करने के सम्बन्ध में पांडव, मिथिलांचल के आर्येतर गाथा–समूह के सबल सोदर भाइयों अथवा सप्त पुरूष–समूह को पुराणों का (शिव पुराण) सप्त–ऋषि–समूह माना जा सकता है जिन्होंने गौरी–विवाह का प्रस्ताव शिव–सम्मुख रखा था। पशु–पक्षी समूह में खररूचि, बाटो–बहिना, तृण एवं कच्ची मिट्‌टी से निर्मित वृन्दावन, भम्हरा (भैरा) चुगिला तथा झांझी कुकुर (विशिष्ट रूप का श्वान) मुर्त्तिकला के विकसित रूप का परिचायक है। इस त्योहार का आयोजन कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी से आरंभ होता है तथा पूर्णिमा को इस पूजन का समापन होता है। इस अवधि में प्रत्येक दिन–रात में पूजन होता है तथा परम्परा के अनुसार डाला (बाँस–निर्मित टोकरी, जिसमें सभी मूर्तियाँ रखी होती हैं) का आदान–प्रदान होता है। इसका गूढ़ अर्थ मूर्ति–निर्माण–कला के गुण–दोष की विवेचना के अतिरिक्त महिलाओं को मूर्त्तिकला की शिक्षा तथा अभ्यास द्वारा विकसित करने की प्रेरणा माना जा सकता है। मूतिका–निर्मित संरचनाओं में धान की भूसी, रूई तथा अन्य कई सामग्रियों का व्यवहार यहाँ की महिलाएँ स्थायित्व हेतु करती हैं। इन्हीं सामग्रियों का प्रयोग का दृष्टान्त अति प्राचीन प्रस्तर मूर्त्तियों के खुरदुरे सतह को समतल करने में पाया जाता है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि इतिहास के हरेक काल–खं डमें प्रचलित मूर्त्तिकला के तकनीक से ये परिचित थे तथा इसका प्रयोग अपने स्थानीय आवश्यकतानुसार करते थे। मैथिल महिलाओं में एक त्योहार 'जितिया' संज्ञा द्वारा पुत्रों के दीर्घायु होने की कामना से सम्पादित होता है, जिसमें जीमूतवाहन की पौराणिक कथा के पारायण होता है। इस आयोजन में कुश–निर्मित जीमूतवाहन की पूजा होती है तथा चिल्ह श्रृगाली (श्रृगाल) तथा अन्य पक्षियों का निर्माण कर कथानक के सदृश दृश्यावली को प्रदर्शित करने की चेष्टा की जाती है। वस्तुतः मिथिलांचल की लोक–संस्कृति अप्रतिम है, जिसके प्रत्येक क्रियात्मक आयोजन में वैदिक संस्कारों की अभा, पौराणिक कथानकों का आदर्श, आध्यात्मिक उन्नयन की अभिलाषा तथा स्थानीय आस्थाओं का सबल पक्ष उदीयमान रहता है। व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से सम्पादित होने वाले प्रायः सभी आयोजनों में अभिव्यक्त ध्येय का दृश्य रूप मूर्तिकला के लाक्षणिक अर्थों की पुष्टि करते हैं। अवसरों की प्रकृति के आधार पर प्रतिरूपों में विविधता प्रकट होती है जो प्रतिमा–विज्ञान की दृष्टि से उसके विकास की प्रावस्थाएँ हैं। वैसे तो ऐसें कृत्यों का मौलिक निहितार्थ कभी धार्मिक मूल्यों की स्थापना, कभी सामाजिक मर्यादा का रेखांकन तथा कभी कृषि आधारित व्यवस्था का सर्वतोभावेन संवर्द्धन होता है। उद्‌भव के उपर्युक्त समृद्ध उदाहरणों के अतिरिक्त मूर्त्तिकला के प्रारंभिक चिन्हों को मिथिलांचल के परम्परागत पर्व–त्योहारों में देखा जा सकता है। चाहे धार्मिक उत्सव हो, अथवा सामाजिक व्यवस्था में चिन्हित संस्कार; हरेक आयोजन में सांकेतिक अथवा मानवीय आकृतियों का सृजन एवं प्रयोजन के अनुकूल सम्पूजन होता है। अपने मौलिक स्वरूप में आज भी ऐसे दृष्टान्त लोक–आस्थाओं के रूप में मिथिलांचल में विद्यमान हैं। आधार सामग्री तथा गोबर आदि का प्रयोग होता है, जबकि चित्ताकर्षक बनाने के क्रम में प्राकृतिक

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-6(A) June-2026

रंगों का प्रयोग होता है। ऐसी साँझी संस्कृति मानवीय गुणों के विकास के साथ–साथ उनके कलात्मक विकास को उत्कर्ष एवं व्यापक बनाने की सफल चेष्टा है। वस्तुतः मिथिलांचल की सांस्कृतिक संरचना, यहाँ की लोक–संस्कृति की श्रेष्ठता न केवल मानवीय गुणों का व्यापक स्वरूप प्रस्तुत करती है, वरन् कला एवं उसके विकास को लोक–जीवन के त्योहारों एवं आस्थाओं में पिरोकर उनके संवर्द्धन का क्रमबद्ध इतिहास भी प्रस्तुत करती है। मिथिलांचल अपने लोक–पर्व एवं त्योहारों के लिए भी प्रख्यात रही है। ऐसे अनेकानेक त्योहार मिथिलांचल में आज भी प्रचलित हैं जो "कला" के विभिन्न तत्वों का विकास किया है। आकृतिमूलक श्रेणी की मूर्त्तियाँ मिथिलांचल के लोक–त्योहारों में प्रचुरता के साथ उपलब्ध हैं। विविध रूप के मूतिका–निर्मित मूर्त्तियों में पशु–पक्षी, खगोलीय पिंड तथा प्राकृतिक वस्तुएँ पौराणिक कथानकों की देव–देवियों, ऋषि–मुनि तथा अवतारी महामानवों का चित्रण दृष्टिगत होता है। प्राकृतिक रंगों के द्वारा इन मूर्त्तियों को और अधिक आकर्षक बनाया जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर प्रयुक्त हाथी, तथा विवाह के समय 'वर' को दिखाने जानेवाले "ठक–बक" मिथिलांचल की मूर्त्तिकला की अभिव्यंजनाएँ हैं।

निष्कर्ष :–

मिथिलांचल में मूर्त्तिकला के विकसित रूप का पुरातात्त्विक साक्ष्य मधुबनी जिला के झंझारपुर सबडिवजीन के पचही ग्राम में प्राप्त हुआ है। ग्राम–स्थिल प्राचीन चामुंडा भगवती के मंदिर–निर्माण के क्रम में अधिक गहराई (15 फीट) से नारी आकृतियाँ समूह रूप में प्राप्त हुई हैं जो पकी मिट्टी से निर्मित हैं। इन समूहों में एक भी पुरूष आकृति नहीं है। इन सभी आकृतियों का स्वरूप मातृदेवियों के विभिन्न स्वरूपात्मक विभेद सदृश अभिव्यंजनाओं में प्रतीत होते हैं। ऐसी उपलब्धियों को मिथिलांचल में 'मूर्त्तिकला' के परिप्रेक्ष्य से जोड़कर देखा जा सकता है।

सम्पूर्ण उल्लिखित उद्धरणों का महत्वपूर्ण उद्घाटित निष्कर्ष यह है कि मिथिलांचल के सांस्कृतिक उत्कर्ष में महिलाओं का योगदान अधिक है। विशिष्ट रूप से कला के विविध पक्ष और शिल्प के विकसित एवं आदर्श स्परूप मैथिली नारियों के श्रम, त्याग तथा प्रतिभा का फलाफल हैं, चाहे विश्व प्रसिद्ध अरिपन (मधुबनी पेंटिग्स) हों, संस्कार–गीतों की स्वर–लहरी हो अथवा बाँस, मूज तथा अन्य वस्तुओं से निर्मित शिल्प हो, हरेक विधा के प्रतिमानों की नियोजी जहाँ की महिलाएँ है। तथ्यों का समेकित परिणाम मूर्त्तिकला के उद्भव एवं विकास से सम्बन्धित कारणों एवं अभिव्यक्ति की ऐतिहासिक क्रमबद्धता प्रदर्शित करने में न केवल सक्षम है, वरन् यहाँ के कुछ तकनीक आधारों का प्रयोग भारतीय परिदृश्य में होने का संकेत देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पूर्वमध्यकालीन भारत का सामंती समाज एवं संस्कृति, पृ. – 189
2. मिथिलांचल का इतिहास– राम प्रकाश शर्मा, पृ.– 6
3. भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.– 96
4. मिथिलांचल में अरिपन– तंत्रनाथ झा, पृ.– 92
5. मिथिलाक व्रत आ पावनि, पृ.– 63
6. मिथिलाक व्रत आ पावनि, पृ.– 78
7. मिथिलाक व्रत आ पावनि, पृ.– 85
8. मिथिलाक व्रत आ पावनि, पृ.– 87
9. मिथिलाक व्रत आ पावनि, पृ.– 94
10. हिन्दुस्तान, नवम्बर– 07